P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-8* ISSUE-2* October- 2020
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

दादूपंथी संत साहित्य एवं कला के संदर्भ में भारतीय संस्कृति का अध्ययन

The study of India culture in the context of Dadupanthi saint literature and Art

Paper Submission: 15/10/2020, Date of Acceptance: 26/10/2020, Date of Publication: 27/10/2020

रामावतार मीना
एसोसिएट प्रोफेसरए
ड्राइंग और पेंटिंग विभाग
कॉलेज टोंक, राजस्थान, भारत

सारांश

संस्कृति स्वयं विशाल व्याप्ति वाला शब्द है, जो हमारे जीवन को एक छोर से दूसरे छोर तक प्रकाशित करता है। दादूपंथी संत सम्प्रदाय, उनके द्वारा रचित साहित्य एवं कला के माध्यम से उस समय संस्कृति का तत्कालीन स्वरूप क्या था, हम देख सकते हैं, जो आज मूल दस्तावेजों की तरह हमारे समक्ष है। संत दादू के जन्म के समय देश में इस्लाम धर्म का बोल–बाला होने के कारण भय और आतंक का वातावरण छाया हुआ था, समाज में उँच–नीच, जाति–धर्म, मत, सम्प्रदाय, अस्पृश्यता, अंधविश्वास, बाह्याडम्बरों से लोग परेशान थे। संत दादू ने अपने सरल और मधुर उपदेशों से जन–सामान्य को निर्गुण भक्ति का संदेश दिया। उन्होंने ईश्वर भक्ति, नामस्मरण, सत्संग, सद्–आचरण को अपनाकर सांसारिक माया मोह, प्रपंच से दूर रहने का आग्रह किया। उनके मतानुसार सच्चे मन से भक्ति करने से ही ईश्वर की प्राप्ति होती है।

दादूपंथी संतों ने मानवता, अद्वैतवाद, गुरू को महत्व, नाम स्मरण, विश्व बंधुत्व पर बल दिया और पाखंडों तथा वर्ण व्यवस्था का विरोध किया। जो हमारी संस्कृति के मूल स्तम्भ रहे हैं। उस समय सभ्यता और संस्कृति का तथा तत्कालीन परिस्थितियों का जीता–जागता चित्रण दादूपंथी पाण्डुलिपि चित्रों व भित्ति चित्रों में देखने को मिलता है। दुर्ग, प्रसाद, मंदिर, हवैलियाँ, राजसी दरबार आदि का वैभव भी इन चित्रों में चित्रित है। दादूजी से संबंधित घटनाओं व भक्ति का सजीव चित्रण इनमें विशेष रूप से हुआ है। इस प्रकार इन पाण्डुलिपि चित्रों में संस्कृति एवं कला की धारा पारस्परिक प्रभाव ग्रहण कर आगे बढ़ती रही है। ये सभी विभिन्न चित्र शैलियों से प्रभावित दादूपंथी चित्र न केवल चित्र विषयक परिज्ञान कराने में सक्षम हैं, अपितु भारत की तत्कालीन संस्कृति की ओर इंगित करते हैं।[1] उस समय का सामाजिक दृष्टिकोण एक व्यापक समाज–व्यवस्था को जन्म देता है, जिससे भारत में मिली–जुली संस्कृति के विकास को बड़ा बल मिला, साथ ही उस समय के सामान्य जन की रूचि व ज्ञान क्या था, कैसी मनोवृत्ति थी, का भी पता चलता है। इन सभी ने सांस्कृतिक संश्लेषण को और मजबूत किया। इस दृष्टि से भी दादूजी व उनकी संत–परम्परा का राजस्थान को प्रमुख और विशिष्ट देन हैं।

Culture itself is a word with a wide range, which illuminates our life from one end to the other Dadupanthi saint community through the literature and art composed by him, what was the then from of culture at that time, we can see what is before us like original documents. At the time of birth of saint Dadu, the atmosphere of fear and terror was overshadowed due to the predominance of Islam religion in the country. The society was troubled high, low, caste, religion, religion-untouchability, supersition, external-dumnells saints . Dadu with his simple and sweet teaching gave a message of devotion to the common man. He urged him to abstain from world illusion, by adopting godly devotion, memoir, satsang good conduct. God only attains god by doing devotion with his sincere heart. The Dadupanthi saints emphasized humanity, monotheism, importance to guru, have mame remembrance, universal brotherhood and opposed hypocrsy, and varna system. Which have been the pillars bof our culture. At that time, the living and living depictions of civilization and culture and the circumstances at that time are seen in dadupanthi manuscript painting and murals durg prasad temple, havelian, the majesty of the royal court etc. In this way, the stream of culture and art in these manuscript paintings has been moving forward by taking mutual influence by all the this, dadupanthi is not only able to give an insight into the picture, but also towards the contemporary culture of India. The social outbook at that time gave rise to a wider social order, strougtheningthe cultural synthesis in all these from the point of view, daduji and his saint traditional has a major and special contribution to Rajasthan.

मुख्य शब्द : प्रत्यक्ष दर्शन, फरमान, सम्प्रदाय, दादूवाणी, संत–साहित्य, पाण्डुलिपि, संस्कृति, भक्ति, सतसंग, प्रपंच, मानवीय, व्यक्तित्व, कर्मकाण्ड,
व्रत–उत्सव, मानवता, अद्वैतवाद, नरायना, कथानक, सर्वधर्म, आत्मतत्व।
Direct Philosophy, Decree, Sect, Daduwani, Saint - Literature Manuscript, Culture, Devotion , Saints, Prapancha, Maan-Veevya, Personality, Ritual, Fast - Celebration, Humanity, Naraina, Story, Sarva Dharma, Atman.

प्रस्तावना

किसी भी देश की संस्कृति की पहचान वहाँ निवास करने वाले लोगों के आचरण और व्यवहार से होती है, जिस पर सम्पूर्ण युगीन वातावरण का भी प्रभाव होता है। संसार के देशों की संस्कृति को समझने के लिए उसकी कला व साहित्य का ज्ञान भी उतना ही आवश्यक है जितना वहाँ के निवासियों के आचार, विचार, आस्था, विश्वास, कर्मकाण्ड, रहन–सहन, पहनावा, आवागमन के साधन, सामाजिक व्यवस्था, अर्थतन्त्र तथा व्रत–उत्सव एवं पर्वो का हैं। धर्म ने भारतीय संस्कृति को सर्वाधिक प्रभावित किया है। धार्मिक संस्कार भारतीय संस्कृति के मूलाधार है।[2]

रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार ''संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते है।[3] संस्कृति व्यापक रूप में मानव के आन्तरिक एवं बाह्य क्रिया–कलापों को प्रदर्शित करने वाला वह व्यापक तत्व है जिसके आधार पर

मानव अपनी विशेषताओं को बनाये रखे हुए है। संस्कृति मानवीय व्यक्तित्व की वह विशेषता है जो उस व्यक्तित्व को एक विशिष्ट अर्थ में महत्वपूर्ण बनाती है।[4]

भारत के भौगोलिक क्षेत्र में विविधता है। गंगा का मैदान और रेगिस्तान का मध्य क्षेत्र इस देश का मुख्य भौगोलिक और सांस्कृतिक हिस्सा है। जहाँ भारतीय संस्कृति का विकास हुआ है। गंगा के तटीय मैदानी क्षेत्रों के मुख्य राज्य, प्राचीनतम् शहर, भारतीय आर्य सभ्यता, उद्योग और वैभवता के अधिकतम् केन्द्र स्थापित हुऐ। यह लाखों में जीवन एवं शक्ति का संचार करती है जो इसको गंगामाता मानकर पूजा करते हैं। हरिद्वार, प्रयाग और वाराणसी में गंगा स्नान करके स्वयं को पवित्र करते हैं।[5] और इसी पावन धरती पर संत दादूदयाल जी का पर्दापण हुआ। दादूजी ने अहमदाबाद से साधना के लिए राजस्थान के करडाला, सांभर, आमेर, दौसा, जयपुर को चुना।

15वीं–16वीं शताब्दी का समय संक्रमणकाल का समय था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्मों के लोग अपनी मूल संस्कृति व सत्य के यथार्थ रूप को छोड़कर बाहरी रूपों व प्रवृत्तियों में उलझ चुके थे। ऐसे संक्रमणकाल में पाखण्ड और बाह्याडम्बरों को दूर कर मूल तत्व (आत्मतत्व) जो भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र है की पहचान कराने हेतु रामानन्द, कबीर, नानक, दादूजी आदि संतों का आविर्भाव हुआ। इन संतों ने हमारी संस्कृति के धार्मिक व आध्यात्मिक दर्शन को अपनी गहन साधना एवं आत्मानुभव के प्रत्यक्ष दर्शन से आध्यात्म ज्ञान का प्रचार–प्रसार किया। इस हेतु जैसे बौद्ध धर्म, जैन एवं वैष्णव धर्मों ने जिस प्रकार धार्मिक ग्रंथों की रचना कर प्रचार–प्रसार किया, उसी प्रकार दादूजी के शिष्यों ने भी दादूजी से सम्बन्धित ग्रंथों का लेखन एवं चित्रांकन किया व करवाया। जिनमें 'दादूवाणी' व 'दादूचरित्र' प्रमुख ग्रंथ है। 'दादूवाणी' का स्थान संत–साहित्य में महत्वपूर्ण है और लोकप्रिय भी। इसकी अनेक हस्तलिखित प्रतियाँ राजस्थान, हरियाणा, पंजाब एवं उत्तर–प्रदेश के विविध मठों तथा संग्रहालयों में सुरक्षीत हैं और इसकी बहुत सी फूटकल रचनाएँ अन्य वाणियों के साथ भी मिलती हैं।[6]

संत दादूदयाल जी का जन्म संवत् 1601 (सन्–1544 ई.) फाल्गुन सूदी अष्टमी को गुजरात के अहमदाबाद नगर में हुआ था। माना जाता है कि लोदीराम ब्राह्मण के कोई संतान नही थी। संतों के आशीर्वाद से साबरमती नदी में स्नान करते समय कमलदल समूह में तैरते हुए बालक की प्राप्ति हुई। मुग़ल शासक अकबर, जयपुर व बिकानेर के महाराजा उनके चमत्कारों से प्रभावित होकर उनके भक्त बन गये थे। दादूजी की सलाह पर बादशाह ने गो वध बंद करवाने का फरमान जारी किया। ये सभी बातें दादूपंथी ग्रंथ चित्रों से भी स्पष्ट हो जाती हैं।[7]

संत दादूजी के मृत्यु समय के प्रति भी विद्वानों में एक मत दिखाई देता है। इनकी मृत्यु जेठ बदी–8, शनिवार, संवत् 1660 (सन् 1603) को हुई थी। स्वामी जनगोपाल ने इनका निधन समय संवत् 1660 की जयेष्ठ बदी अष्टमी को माना है।[8] यही तिथि दादू सम्प्रदाय में भी मानी जाती है। इसी कारण दादू सम्प्रदाय की प्रमुख गद्दी 'नारायणा' में आज भी फाल्गुन सुदी 5 से 11 तक सात दिवस का मेला लगता है। इस काल को मान लेने पर संत दादू जी के जीवन की अन्य घटनाओं की भी सत्यता स्पष्टतः अंकित होती है। जैसे संत दादू का अकबर (1540–1605 ई.) के समकालीन होना और आमेर नरेश राजा भगवानदास (1574–1589 ई.) व राजा मानसिंह (1589–1615 ई.) के समय में उनके सम्पर्क में आना आदि। इन सभी घटनाओं का चित्रण भी दादूपंथी सम्प्रदाय की पाण्डुलिपियों में बड़े ही रोचक ढंग से किया गया है। दादूजी के बाद यह सम्प्रदाय पाँच भागों में विभक्त हो गया था– (1) खालसा (2) विरक्त तपस्वी (3) उत्तराधे या स्थानधारी (4) नागा (5) खाकी।[9]

अध्ययन का उद्देश्य

किसी भी देश की संस्कृति उसकी आध्यात्मिक, वैज्ञानिक तथा कलात्मक उपलब्धियों की प्रतीक होती है और यही संस्कृति उस सम्पूर्ण देश के मानसिक विकास को सूचित करती है। इस पक्ष को मेरे इस शोध पत्र के माध्यम से उजागर एवं प्रबल करना है, साथ ही इस शोध–पत्र के माध्यम से भारतीय संस्कृति का विशेष पहलु जो संत–परम्पराओं द्वारा प्रवाहित है के विविध पक्षों को समाज के सामने उजागर करना है। तथा दादूपंथी संत–साहित्य एवं चित्रों में वर्णित संस्कृति का भारतीय संस्कृति में स्थान निश्चित करना है।

दादूपंथी साहित्य में संस्कृति

विद्वानों का मत है कि मध्यकालीन साहित्य एवं कला में हमारी सम्पूर्ण संस्कृति दिखाई देती है। दादूपंथी साहित्य में इस परम्परा के तहत अनेक सचित्र पाण्डुलिपियों की रचना की गई एवं उनको सुन्दर–सुन्दर चित्रों से पाठ के कथानक के अनुसार सजाया गया है। साहित्य की इसी परम्परा में दादूजी की वाणी आत्मा की शाँति के लिए रामबाण औषधि है। इसमें मनुष्य को सत्यमार्ग की ओर बढ़ने हेतु प्रेरित किया है। वही दूसरी तरफ इनकी संत–परम्परा में हुये संतों ने मानवता, अद्धैतवाद, पाखण्डों के विरोध, गुरू के महत्व, नाम स्मरण, विश्व बंधुत्व, पर बल देने के साथ ही वर्ण व्यवस्था का विरोध भी किया। मानवता, अद्धैतवाद, गुरू को महत्व व विश्व बंधुत्व आदि हमारी संस्कृति के मुख्य स्थम्भ भी रहें हैं।

दादू ने कबीर की निर्गुण भक्ति धारा को ही आगे बढ़ाया। उन्होंने ईश्वर को निराकार माना है, जिसका जन्म होता है न मृत्यु। न वह सोता है न जागता है सारा संसार उसी से पैदा होकर उसी में विलीन हो जाता है। न वह घटता है न बढ़ता है, न वह उठता है न बैठता है। वह पूर्ण है, निश्चल है, एक रस है, निर्मल है, सत्य है, अविचल व स्थिर है।

''उठै न बैठे एक रस, जागता सोवे नाहि।
मरे न जीवे जगत गुरू, सब उपजि, खपै उस मांहि''।।[10]

दादूजी ने ईश्वर प्राप्ति के लिए भक्ति के मार्ग को ही अपनाया है, प्राण रूपी दादू ने भी नाम स्मरण पर बल दिया है। जो हमारी संस्कृति एवं धर्म का एक अविभाज्य अंग रहा है–

''दादू नीका नाम है सो तू हिरदै राखि।
पाखण्ड परपंच दूरि करि, सुनि, साधुजन की साखि।।
दादू नीका नाम है, आप कहे समझाइ।
और आरम्भ सब छाड़ि दे, राम नाम ल्यौ लाई।।[11]

ईश्वर प्राप्ति के दोनों मार्ग ज्ञान व भक्ति में से साधक किसी एक मार्ग को ग्रहण करता है। वही दादू जी की वाणी में श्रवण, कीर्तन व स्मरण का निरूपण है। दादूजी ने योग–क्रियाओं को भी अपनाया है वे शारीरिक क्रियाओं द्वारा स्थूल शरीर पर विजय प्राप्त करना चाहते थे। प्राणायाम, स्वरोदय, इडा, पिंगला, सुषुम्णा, कुण्डलिनी की जागृति, षट्–चक्रभेद आदि दोनों में समान होते हैं। वे मानते थे कि कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत होने पर ब्रह्मद्वार खुलता है। जीव ब्रह्म में मिल जाता है और संसार के आवागमन के चक्र से मुक्ति मिल जाती है और यही हमारी धार्मिक संस्कृति के मुख्य लक्षण है, ये सभी हमें अन्तिम लक्ष्य तक पहुँचाने के रास्ते है, जो दादूपंथी साहित्य में वर्णित हैं जैसे–

''जामण मरण जाई भव भाजै, अवरण के घर वरण समाई।
दादू जाय मिलै जग जीवन तब यहू आवागमन बिलाई।।[12]

दादूपंथी संतों ने इस प्रकार की साहित्य रचना एवं योगासन सम्बन्धित चित्रों को चित्रांकित किया। ये लोग ''योगसाधना'' पर विशेष जोर देते थे। इस प्रकार का एक ग्रंथ संवत् 1846 (1789 ई.) में चित्रित हुआ था। जिसके लेखक जंयतीराम जी थे एवं रेखांकन खातीपुर निवासी शोभाराम जी ने किया था। जिसमें 106 रेखाचित्र विभिन्न योगों से सम्बन्धित हैं। वर्तमान में यह ग्रंथ राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में ग्रंथांक सं. 5450 पर संग्रहित है[13]

'दादूवाणी' के अध्ययन से पता लगता है कि मध्यकाल के इन निर्गुण संतों द्वारा दिये गये दार्शनिक सिद्धांत बहुत सरल और परिपक्व हैं। उन्होंने ब्रह्म, माया, जीव, जगत, आत्मा–परमात्मा का अपनी वाणी में उल्लेख किया, साथ ही दादू जी ने विश्व बंधुत्व की भावना पर भी बल दिया है, आत्म समर्पण भी भक्ति के लिए आवश्यक है जैसे –

''तन भी तेरा मन भी तेरा, तेरा पिण्ड दान।
सब कुछ तेरा, तूँ है मेरा, यहू दादू का ज्ञान।।[14]

अतः वह कहा जा सकता है कि भारतीय दार्शनिक एवं धार्मिक संस्कृति में दादूपंथी संत साहित्य ने जो अगणित चिस्सुरचित पुण्य पिरोये हे; वे आज भी मानव समाज को अभिसंस्कृत करने में समर्थ हो रहे हैं।

दादूपंथी ग्रंथ चित्रों में संस्कृति

दादूपंथी ग्रंथों व ग्रंथ चित्रों में 'संस्कृति' का व्यापक रूप दिखलाई पड़ता है। इन ग्रंथों में मानव के आन्तरिक एवं बाह्म क्रिया–कलापों व दार्शनिक पक्ष को प्रदर्शित करने वाले व्यापक तत्व विद्यमान हैं और यहीं तत्व हमें उस समय की संस्कृति से परिचय कराते है। कला मर्मज्ञ रायकृष्ण दास जी ने भारत कला भवन के सूची–पत्र के प्रारम्भिक निवेदन में लिखा है ''कि किसी भी चित्रित साहित्य का अध्ययन बिना उस काल के चित्रों व उस ग्रंथ के चित्रों के अध्ययन से अधूरा और अपरिपक्व रहता है क्योंकि कवि जो लिखता था चित्रकार उसे अंकित करता था। कविता के अनेक स्थल, जिनके अर्थ विवादग्रस्त है, इन चित्रों की सहायता से स्पष्ट होते हैं।[15]

जिस प्रकार साहित्य समाज का दर्पण है, कुछ हद तक हम कह सकते है कि चित्र भी समाज का दर्पण हैं। दूसरे शब्दों में दादूपंथी चित्रित ग्रंथ चित्रों में तत्कालीन जीवन पद्धतियों के विभिन्न पहलुओं को समकालीन चित्रों में उतारा गया है, जिनमें जन–साधारण की संस्कृति सम्बन्धित सामग्री व दरबारी संस्कृति का चित्रण बहुलता से हुआ है। सन् 1851 में लिखित एवं

चित्रित ग्रंथ 'श्री दादू दयाल जी का सचित्र चरित्र वर्णन' में 179 लघु–चित्रों का चित्रण किया गया है, जिनमें भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत विषयों का प्रतिबिम्बन हुआ है। उपरोक्त ग्रंथ राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान के ग्रंथांक सं. 2554 पर संग्रहित है। इसी भण्डार में ग्रंथांक सं. 15299 पर संग्रहित 'चित्तावणी' नामक ग्रंथ हैं इसमें 119 सुन्दर लघु चित्र हैं। ग्रंथ में पृष्ठ सं. 19 से 42 तक 'प्रहलाद चरित', पृष्ठ सं. 42 से 55 तक 'चित्तावणी' एवं 55 से 77 तक ''ध्रुवचरित'' नामक ग्रंथ संकलित हैं। सम्पूर्ण ग्रंथ में 77 पृष्ठ हैं। इनमें चित्रित ग्रंथों में भारतीय संस्कृति के विविध स्वरूपों से परिचय हमें प्राप्त होता है। इन चित्रों के अवलोकन से यह भी पता चलता है कि राजस्थान की साँस्कृतिक परम्परा का अन्य राज्यों की साँस्कृतिक परम्परा से आदान–प्रदान अवश्य रहा होगा। इसी संग्रह के ग्रंथांक सं. 5450 पर संग्रहित 'योगासन माला' नामक चित्रित पाण्डुलिपि है, इसमें 106 रेखाचित्र विभिन्न योगों से सम्बन्धित है। दादूपंथी संत चूँकि 'योग–साधना' पर विशेष जोर देते हैं परिणामस्वरूप इस सम्प्रदाय के निर्गुणी संतों द्वारा इस प्रकार की साहित्य रचना एवं योगों के चित्रों की रचना की। जिनमें दादू संतों की संस्कृति झलकती ळें

मध्यकालीन राजपूत संस्कृति मुख्य रूप से परम्परावादी थी और उन परम्पराओं की रक्षक थी, दूसरी तरफ परिवर्तन की लहर चारों तरफ फैल रही थी। 15वीं से 18वीं शता. तक आते–आते राजपूतों व मुग़ल बादशाहों के बीच गहरे स्तर पर उन्मुक्त साँस्कृतिक आदान–प्रदान हुआ। जिसके मुखर साक्षी ये दादूपंथी चित्र हैं। इन चित्रों में राजपूत–मुग़ल दरबारी संस्कृति पूरी तरह से प्रतिबिम्बित है। इनमें दरबार और अन्तः पुर के दृश्य तथा सांस्कृतिक कार्यक्रम, शिकार के दृश्य, कभी–कभी युद्ध के दृश्य आदि मिलते हैं। तत्कालीन वाद्य–यंत्रों का चित्रण भी हमें प्राप्त होता है। इन ग्रंथ चित्रों में कथा–कहानियों के माध्यम से दादूजी के जीवन वृत आदि के माध्यम से ही समाज के विभिन्न वर्गों में प्रचलित संस्कृति का अंकन मिलता है। चित्रों में विलासमय जीवन, कठोर राज्य प्रशासन, युद्धरत सैनिक, दैनिक कार्यरत् नर–नारी, दादूजी के जीवन से सम्बन्धित लौकिक घटनायें, राजभवनों में विलासरत् राजा–राजमहिषियाँ, ध्यानमग्न दादूपंथी साधु, भक्त प्रहलाद की कथा, योगों से सम्बन्धित चित्र, दादूवाणी का सार समझाते दादूजी, दादूजी की विविध राजाओं के साथ भेंट वार्ताऐं, विविध प्रसंगों में बने सामाजिक चित्रों के साथ ही विविध पशु–पक्षियों व प्रकृति का भावभीना चित्रण चितेरों ने किया है।

भारतीय संस्कृति एवं समाज में साधु–संतों को व ब्राह्मणों को दान–दक्षिणा व शिक्षा आदि देना परमार्थ व धर्म का कार्य समझा जाता है। इन्हीं परम्पराओं व संस्कृति का चित्रांकन दादूपंथी पाण्डुलिपि चित्रों में हुआ है। उदाहरणार्थ राज. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर में ग्रंथांक सं. 25541 पर संग्रहित 'दादूदयाल जी का सचित्र जीवन चरित्र' नामक ग्रंथ के पृष्ठ सं. 49 पर चित्रित एक महिला, संत (साधु) को भिक्षा देती हुई चित्रित कि गई है। साधु को लगोट एवं कंधे पर पतला कपड़ा पहने चित्रित किया है, पैरों में खडाऊ पहने हुये है। महिला को राजस्थानी वेशभूषा व आभूषणों को पहने अंकित किया है। चित्र को देखने मात्र से ही विषय समझ में आ जाता है, इसी ग्रंथ के पृष्ठ सं. 41 पर चित्रांकित 'भिक्षा मांगते हुये संत दादूजी' नामक चित्र में संत दादूजी को अपनी माँ से भिक्षा माँगते हुए चित्रित किया है। भारतीय संस्कृति की परम्परानुसार ग्रहस्थी जीवन को त्याग कर साधु–संत बनने से पहले उस व्यक्ति को सर्वप्रथम अपने घर में ही भिक्षा माँगनी पड़ती है, जिसका प्राचीन समय से ही समाज में प्रचलन है, भगवान गौतम बुद्ध का 'यशोधरा' से भिक्षा माँगना' नामक चित्र गुफा सं. 17 में उपलब्ध है, जो इस तथ्य का महत्वपूर्ण उदाहरण है, चित्र में यशोधरा के द्वार पर भगवान बुद्ध एक भिक्षक के रूप में आये है। इस भाव को इसमें बखूबी दर्शाया गया है।[16] प्रस्तुत चित्र में दादूजी को इस रूप में देखकर उनकी माँ घबरा जाती है, अन्य महिलाएँ हाथ जोड़कर प्रणाम करती हुई चित्रांकित है। दादूजी को प्रसन्नचित मुद्रा में झोली लटकाये हुए, लगोट बांधे व पैरों में लकड़ी के खड़ाऊ पहने हुए, हाथ में भिक्षा पात्र लिये, चित्रांकित किया है। ये सभी वस्त्र इत्यादि हमारी संस्कृति के परिचायक है साथ ही ये इस प्रकार के क्षण होते है जब मनुष्य को निर्णय लेना बहुत ही कठीन होता है।

वस्तुतः धर्म का मानव के सामाजिक जीवन से अटूट सम्बन्ध है और मानव–जीवन का साहित्य और कला से। दादूपंथियों ने ऐसे–ऐसे कथानकों को लेकर ग्रंथों की रचना की, जिनसे असीम शाँति एवं अपार्थिव विश्रान्ति का भाव ध्वनित होता है। इनमें भागवत की कथाओं के सप्रसंग चित्रों का चित्रांकन हुआ है।

राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के ग्रंथांक सं. 15299 पर संग्रहित ग्रंथ 'चित्तावणी' में इस प्रकार का चित्रांकन किया गया है ग्रंथ के पृष्ठ सं. 26 पर अंकित चित्र ''भक्त प्रहलाद का जन्म'' में भारतीय संस्कृति का विशिष्ठ पहलु जन्मोत्सव जैसे सामाजिक समारोह का चित्रांकन बड़ी कुशलता पूर्वक किया है। इस चित्र के उच्चत्तर भाग तक प्रासाद बनाया गया है और प्रासाद के बायें हिस्से में सबसे ऊपर नवजात शिशु भक्त प्रहलाद व रानी माँ की परिचर्चा के साथ ही उनकी दासी का चित्रण किया है। उनके नीचे दो राजकुमारों का चित्रण भवन के निचले हिस्से में किया है। मध्य में राजा का चित्रण है। जिनके सामने राज–प्रासाद में देवगणों का अंकन अति सुन्दरता के साथ किया गया है।

इसी तरह का चित्रण 'दादूजी को अंग व विनती को अंग' ग्रंथ के चित्रित फलकों पर देखा जा सकता है। जिसमें 'मत्स्य–अवतार', 'रावण–वध', 'राम–अवतार', 'नृसिंह–अवतार' आदि भारतीय संस्कृति से ओत–प्रोत धार्मिक विषयों का चित्रांकन किया गया है जिनमें संस्कृति व समाज के विभिन्न पहलुओं का दर्शन सहज ही हो जाता है। इन चित्रों में जहाँ एक ओर भक्तिपूर्ण चित्रों की बहुलता है, वहाँ उपदेश एवं प्रवचन विषयक चित्रों की भी कमी नहीं है। वस्तुतः आध्यात्मिक मार्ग में उपदेशों एवं प्रवचनों द्वारा ही जीवों में निहित भव–विषयक माया–मोह एवं राग–द्वेष रूप परिणति को नष्ट किया जा सकता है जिससे जीव वस्तु तत्व को उचित रूप में समझकर तद्रूप क्रिया करने में सार्थक हो सके। 'दादूदयाल जी

का जीवन–चरित्र' नामक ग्रंथ के एक चित्रित पृष्ठ पर बना चित्र 'उपदेश देते हुए दादूजी' में आसन पर आरूढ़ दादूजी को प्रवचन सुनाते हुए चित्रित किया है, उनके पिछे शिष्यों को बनाया गया है। वहीं दूसरी तरफ चार राज–पुरूषों को हाथ जोड़े करबद्ध मुद्रा में चित्रांकित किया गया है। दादूजी एवं अन्य मानवाकृतियों के ऊपर सुन्दर शामियाने का चित्रण भी किया गया है।

''दादूदयाल जी का सचित्र जीवन–चरित्र' नामक ग्रंथ में दादूजी के जीवन व उनके चमत्कारों के साथ ही ऐतिहासिक चित्रों का चित्रांकन भी हुआ हैं, उदाहरणार्थ– एक बार दादूजी सूर्यसिंह खींची के द्वारा बादशाह अकबर और राजा भगवन्तदास की प्रार्थना सुनकर अपने सात शिष्यों के साथ सात दिन में सीकरी गये। वहाँ दादूजी के दर्शन अकबर बादशाह ने किये और प्रवचन भी सुने। बादशाह ने दादूजी की परीक्षा करना चाहा तब दादूजी ने अकस्मात् सभा के मध्य आकाश में 'तेजोमय तख्त' भी दिखाया। वह अपूर्व और अद्भुत था। राघवदास जी ने अपनी भक्त–माल के 461 के मनहर[17] में उक्त 'तखत' का परिचय दिया है:–

'' नूर ही का तखत रू पाये जाके नूर ही के,
नूर ही के दादू–दास, नूर मन भाव ही।
नूर ही के गुनी जन गावत गुणानुवाद,
नूर ही की सभा कर जोर शीश नाव ही।।

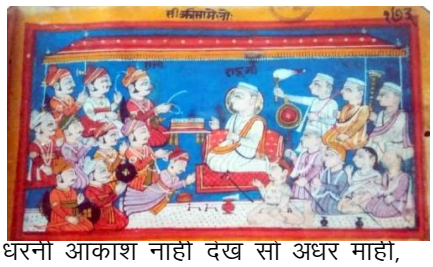

धरनी आकाश नाहीं देख सो अधर माहीं,
नूर हो दीदार किये ताप–ताप जाव ही।
राधो कहै ताकि छवि मानों उदै कोटि रवि,
तखत की महिमा कछु कहत न आवही।। 461

उसके बाद दादूजी ने अकबर को उपदेश देकर गोवध बंद कराया था तथा किसी निर्दोष प्राणी को नही सताने की शपथ भी दिलाई थी। इस प्रकार की घटनाओं का सहज एवं सरल तरीके से दादूपंथी सचित्र पाण्डुलिपियों में स्वतंत्र रूप से चित्रण हुआ है।

भारतीय संस्कृति के विविध पहलुओं का चित्रांकन इन ग्रंथ चित्रों में देखने को मिलता है, जैसे दादूपंथी सम्प्रदाय के संत होली खेलते व भजन–किर्तन के साथ युद्धाभ्यास करते हुये, जैसे रोचक विषयों का चित्रांकन भी इन चित्रों में हुआ है। जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। अन्य कहीं भी संतों को होली खेलते हुए जैसे चित्र देखने को नहीं मिलते हैं। इस अवसर पर ये लोग युद्धाभ्यास भी करते थे।

विशेष

सत्य, अहिंसा, करूणा, समन्वय, विश्व–बन्धुत्व की भावना और सर्वधर्म समभाव, ये दादूपंथी संत सम्प्रदाय व संतों के वह उद्देश्य हैं जिन्होंने हमारी संस्कृति में शक्ति उत्पन्न की और हमारी संस्कृति 'सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम्' जैसे अनेक सकारात्मक पक्षों की और अग्रसर हुई।

निष्कर्ष

दादूपंथी संत साहित्य एवं कलात्मक चित्रों के माध्यम से हमें सहज ही ज्ञात हो जाता है कि उस समय की सभ्यता और संस्कृति का तथा तत्कालीन परिस्थियों का जीता–जागता वर्णन एवं चित्रण इनमें हुआ है। दुर्ग, प्रसाद, मंदिर, हवेलियाँ, राजसी–दरबार आदि का वैभव भी इन चित्रों में चित्रित है। दादूजी से सम्बंधित घटनाओं, भारतीय जनमानस से जुड़ी विभिन्न कथाओं व भक्ति का सजीव चित्रण इनमें विशेष रूप से हुआ है। इस प्रकार इन ग्रंथों व ग्रंथों में चित्रित चित्रों में भारतीय संस्कृति एवं कला की धारा पारस्परिक प्रभाव ग्रहण कर आगे बढ़ती रही है, आज भारतीय संस्कृति की अनुपम धरोहर इनमें सुरक्षित है। अतः विभिन्न धार्मिक ग्रंथों व मान्यताओं के प्रभाव व विभिन्न चित्र शैलियों के प्रभाव से युक्त दादूपंथी ग्रंथ चित्रों का भारतीय कला एवं साँस्कृतिक इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान रहा है, जिनको हमारे देश में कला की अमुल्य धरोहर के रूप में सुरक्षित रखना भी आवश्यक है और जन सामान्य तक इनकी पहुँच सुलभ हो सके, ये भी प्रयास हमें करने होगें। जिससे समाज और लाभान्वित हो सके तथा देश के मानसिक विकास को और प्रबल कर सके।

संदर्भ सूची

1. *डॉ. रामावतार मीना :– दादूपंथी संत–सम्प्रदाय, साहित्य एवं कला; पृ.सं. 6–17; जयपुर– 2011.*
2. *डॉ. ज्योतिमा :–18 वीं शता. के राजस्थानी चित्रों के परिप्रेक्ष्य में संस्कृति का अध्ययन; पृ. 16; वाराणसी– 2011.*
3. *रामधारी सिंह दिनकर :–संस्कृति के चार अध्याय; पृ. सं. 98; इलाहाबाद–1993.*
4. *डॉ. ज्योतिमा :–18 वीं शता. के राजस्थानी चित्रों के परिप्रेक्ष्य में संस्कृति का अध्ययन; पृ. सं. 16–17; वाराणसी–2011.*
5. *डॉ. चन्द्रशेखर भारद्वाज :–भारतीय समाज कला एवं संस्कृति; पृ.स. 25; नई दिल्ली–2015.*
6. *परशुराम चतुर्वेदी:– दादू ग्रंथावली, पृष्ठ–6, बलिया–संवत्–1969.*
7. *डॉ. रामावतार मीना :– दादूपंथी संत–सम्प्रदाय साहित्य एवं कला; देखिए चित्र सं. 10–42; जयपुर–2011.*
8. *जनगोपाल कृत :–''जन्मलीला परची'' पृ. 176–85*
9. *परशुराम चतुर्वेदी –दादूग्रंथावली; पृ. सं.– 11–12, गीता जयंती, बलिया–1959*
10. *श्री दादू दयाल जी की वाणी :– (सं.) मंगलदास स्वामी; पृ. 13; जयपुर।*
11. *यही; पृ. सं. 12 एवं 18.*
12. *यही; पृ. सं. 37.*
13. *डॉ. रामावतार मीना :– दादूपंथीसंत–सम्प्रदाय साहित्य एवं कला; पृ.स. 9–10; जयपुर–2011.*
14. *श्री दादूदयाल जी वाणी :–(सं.) मंगलदास स्वामी; पृ.–81, जयपुर।*
15. *आकृति/अक्टूबर:–राजस्थान ललित कला, अकादमी, जयपुर–1972*
16. *रीता प्रताप :– भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला का इतिहास; पृ.सं. 70–71; राज. हि. ग्रं. अकादमी, जयपुर–2004*
17. *नारायणदास, स्वामी संतकवि :– श्री दादू पंथ परिचय (दादूपंथ का इतिहास छः से दश पर्व रूप), द्वितीय भाग; पृ. 23; दादू महाविद्यालय, जयपुर–1970.*